नहीं कहा जा सकता। मुक्ति (संसिद्धि) की किसी भी अवस्था में जीव परम-चेतन नहीं हो सकता। ऐसा कहने वाला मत निस्सन्देह भ्रान्त है। जीव चेतन तो है, किन्तु पूर्ण अथवा परम चेतन नहीं।

जीव और ईश्वर में भेद का विवेचन भगवद्गीता के तेरहवें अध्याय में किया गया है। श्रीभगवान् तथा जीव दोनों ही 'क्षेत्रज्ञ' अर्थात् चेतन हैं। दोनों में भेद यह है कि जीव व्यष्टि-चेतन हैं और श्रीभगवान् समष्टि-चेतन हैं। प्रकारान्तर से, जीव की चेतना एक देह तक सीमित है, जबकि श्रीभगवान् की चेतना सर्वव्यापी है। जीवमात्र के हृदय में बैठे होने से उन्हें जीवों की मानसिक वृत्ति का पूर्ण ज्ञान रहता है, इस तथ्य को स्मरण रखना चाहिए। यह भी कहा गया है कि जीव के हृदय में ईश्वर-रूप से स्थित परमात्मा स्वेच्छानुरूप कर्म करने के लिए जीव को निर्देश देते हैं। मायाबद्ध जीव को तो अपने कार्य कर्म की भी विस्मृति हो जाती है। पहले वह कुछ कर्म करने का निश्चय करता है और फिर अपने ही कर्म और कर्मफल में बँध जाता है। एक प्रकार का शरीर त्याग कर वह अन्य देह में प्रविष्ट होता है, उसी भाँति जैसे जीर्ण वस्त्रों को उतार कर नूतन परिधान धारण किया जाता है। इस विधि से देहान्तर करता हुआ जीवात्मा अपने पिछले कर्मफल को भोगता है। इन कर्मों का स्वरूप तभी बदला जा सकता है, जब वह सत्त्वगुण में स्थित होकर स्वस्थ चित्त से अपने लिए उपयुक्त कर्म का निश्चय कर ले। यदि वह ऐसा करे तो उसके विगत सम्पूर्ण कर्मों का फल बदला जा सकता है। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि कर्मफल शाश्वत् (नित्य) नहीं है। इसीलिए हम कह आए हैं कि ईश्वर, जीव, प्रकृति तथा काल नित्य तत्त्व हैं, जबकि कर्म नित्य नहीं है।

परम चेतन ईश्वर और जीव की समानता को इस प्रकार समझा जा सकता है। दोनों की चेतना दिव्य है। ऐसा नहीं कि चेतना का उद्भव जड़ प्रकृति के संग से होता है। यह विचार सर्वथा भ्रान्तिमूलक है। भगवद्गीता इस मत को स्वीकार नहीं करती कि प्राकृतिक रसायनों के सम्मिश्रण की किसी विशिष्ट परिस्थिति में चेतना का उदय हुआ हो। किसी रंग के कांच में से प्रतिबिम्बित प्रकाश उसी वर्ण का प्रतीत होता है। माया आवरण के कारण जीव की चेतना तो इस प्रकार विकृत रूप से प्रतिबिम्बित हो सकती है, किन्तु श्रीभगवान् की चेतना माया से नहीं ढक सकती। भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं **मयाध्यक्षेण प्रकृतिः**। उनके संसार में अवतरित होने पर भी उनकी चेतना माया से अतीत रहती है। यदि ऐसा नहीं होता तो वे दिव्य-तत्त्व का प्रवचन नहीं कर सकते, जैसे उन्होंने भगवद्गीता में किया है। वैकुण्ठ-जगत् का वर्णन वही कर सकता है, जिसकी चेतना माया-विकारों से मुक्त हो। अतः यह सिद्ध होता है कि श्रीभगवान् माया-दोष से नित्य मुक्त हैं। इसके विपरीत वर्तमान में हमारी चेतना माया आवरण से दूषित है। भगवद्गीता सिखाती है कि इसे शुद्ध करना है। जब यह चेतना शुद्ध हो जायेगी तो हमारे कर्म श्रीभगवान् की इच्छापूर्ति में ही तत्पर रहेंगे, जिसके परिणाम में हमें शाश्वत् सुख की प्राप्ति होगी।